प्रेमचन्द के कथा साहित्य में स्त्री विमर्श

शैलेन्द्र कुमार सोनी, ज्योत्सना सोनी
वर्धमान महाविद्यालय, इटारसी (म.प्र.) भारत

शोध सारांश

उपन्यास, मानव–जीवन का समग्र रूप से चित्रण करने वाली सशक्त साहित्यिक विधा है मानव–जीवन की अनेक घटनाओ का चित्रण उपन्यासकार अपने उपन्यासों में पात्रों अथवा चरित्रों के माध्यम से साकार करता हैं। नारी तथा पुरूष मानव–जीवन रूपी इन्हीं दो पहियों के बल पर अग्रसर होता है। समाज में स्त्री–पुरूष का समान महत्व है परिवर्तन प्रकृति का नियम है और समाज में स्त्री–पुरूषों के जीवन में भी परिवर्तन होता है। इस परिवर्तन का प्रतिविम्ब हम प्रेमचन्द के उपन्यासों में देख सकते है। क्योंकि उपन्यास अपने युग की झाँकी लेकर उपस्थित होते है। समाज मे यह परिवर्तन विशेषतः नारी जीवन में अधिक दिखाई देता है समाज में उसको कभी देवता के "देवता" के उदात्त स्थान पर विभूषित किया गया था, तो कभी उसके साथ "दासी" जैसा व्यवहार किया गया। कभी वह पुरूष के "प्रेरणदात्री" बनी है, तो कभी उसका मूल्य मनबहलाव, के खिलौने से अधिक नहीं माना गया।

I भूमिका

भारतीय संस्कृति में नारी के महत्वपूर्ण एवं गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है, भारतीय दर्शन मे नारी को प्रकृति रूपा माना गया है। प्रकृति और पुरूष के संयोग से ही सृष्टि उत्पत्ति हुइ है ऐसा माना जाता है। नारी पुरूष "अनुगामिनी" नही बल्कि "सहगामिनी" तथा "सहचरी" है।

हमारे प्राचीन साहित्य में स्त्री को पुरूष के समकक्ष स्वीकार किया गया था। परिवार में भी उसे महत्वपूर्ण एवं सम्मानीय स्थान प्राप्त था। गृहस्थी के मेरूदंड के रूप में उसे माना जाता था। परिवार तथा समाज में सभी अधिकार उसे प्राप्त थें। कोई भी पुण्य कार्य नारी के बिना नहीं किया जाता था। अर्थार्जन की स्वतंत्रता के कारण वह आत्मनिर्भर थी।

धीरे–धीरे समाज में होने वाले परिवर्तन के कारण नारी का स्थान गिरता गया। उसके सारे अधिकार छीन लिए गए। आर्थिक दृष्टि से वह पराधीन बन गई। स्त्री किसी भी प्रकार के स्वातंत्र्य के लिए योग्य नहीं हैं, उसे हमेंशा किसी के आधीन ही रखना चाहिए, यह विचार समाज में रूढ़ होता गया। स्वयं नारी ने भी समझौता कर लिया।

II स्त्री विमर्श विषयक अनुशीलन

सृष्टि के उषाकाल से ही नारी पुरूष की कोमल भावनाओं में चेतना फूकती और उसकी कल्पनाओं में रंग भरती आई है। नारी से ही नर शक्तिवान कहलाता रहा है। सृष्टि के प्रारंम्भ से लेकर अब तक, पाषाणकाल के स्पूतनिक युग तक नारी, नर के जीवन का पोषण एवं उन्नयन करत रही है। आज तक उसने अपनी ममता, वात्सल्य, त्याग, करूणा, कोमलता एवं मधुरता से कठोर एवं रूक्षता को कम कर जीवन में एक स्निग्ध, अजस्र प्रेमधारा बहाने में अपूर्व योग दिया है। विश्व का समाजिक इतिहास बतलाता है कि पुरूष ने प्रगतिपथ पर अग्रसर होने के लिए किसी न किसी अंश मे माता, बहिन, पत्नी, प्रेयसी आदि से किसी प्रकार की प्रेरणा अवश्य प्राप्त की है।

"आँचल में दुध और आँखों में पानी" लिए त्यागमयी नारी सामाजिक व्यवस्था का अनिवार्य अंग रही है और यह स्पष्ट है कि हमारी आदिमकालीन गृहस्थी का शिलान्यास नारी की कोमलता और कर–कमलों द्वारा ही हुआ था।

प्रायः सभी युगों में पुरूष रूपी सूत्रधार ने विश्व रंगमंच पर नारी को कठपुतलियाँ समझकर अपनी उंगुलियों के इशारों पर जैसे चाहा नचाया है। इस नाटक के सभी अंक दुखमय ही रहे है। वहीं अपवाद स्वरूप आये सुखद दृश्यों पर भी विवशताकी छाया सर्वत्र व्याप्त रही, क्योंकि पुरूष ने उसे सम्पत्ति मात्र समझा है।

नारी को देवी कहकर पुरूष ने उसके अधिकारो से वंचित करने का अच्छा नाटक खेला है। देवी कहकर पुरूष ने उसे पाषाणी प्रतिमा बना दिया और उसके मानवी जीवन को भी दुर्वह कर दिया। और "सर्मपण" ही उसका जीवन हो गया। समाज–शास्त्रियों के लिए यह सबसे बड़ा आश्चर्य है नारी के उदर से जन्म लेकर, उसकी गोद में मचलकर, माता की ममता, बहन का स्नेह, प्रेयसी का प्यार तथा पत्नी का समर्पण पाकर भी पुरूष नारी के प्रति पाषाण कैसे बना ? इससे भी बड़ा आश्चर्य तो यह है कि पददलित होकर भ नारी पुरूष के प्रति नवनीत – सी कोमल कैसे बनी रही ? उसका स्नेह का स्त्रोत सूख क्यों नही गया ? कदाचित इसका रहस्य नारी भी नही जानती नही तो मानवता की यह वेलि समर्पण बिना कैसे पनपती, पुष्पित पल्लवित होती ?

III प्रेमचंद कथा साहित्य में स्त्री विमर्श

हिन्दी साहित्य के इतिहास में बीस वर्षो का काल "प्रेमचंद युग" नाम से जाना जाता है। वह भारत के राजनैतिक इतिहास की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण रहा है। राष्ट्रीय जाग्रति एवं समाजिक उदबोधन के इस काल में जनता राष्ट्रीय राजनीति में हिस्सा ले रही थी। राजनैतिक आंदोलनों के फलस्वरूप सम्पूर्ण भारतीय समाज अपने अधिकारों के प्रति जाग्रत हो गया। गाँधी जी की प्रेरणा से स्त्री राष्ट्रीय आन्दोलन मे उत्साह से कूद पड़ी। जिस स्त्री ने अभी तक बाजार भी नही देखा

था। वह हाथों में तिरंगा झण्ड़ा लेकर क्रांति के गीत गाती हुई नजर आने लगी। राजनीति मे प्रवेश से नारी जीवन में मोड आने लगा। नारी के इस उज्जवल एवं नवीनतम रूप को देखकर उपन्यासकार स्तम्भित रह गए और अपने उपन्यास में नारी के इस नवीनतम रूप को चित्रित करना प्रारम्भ कर दिया।

यह युग नारी–मुक्ति आन्दोलन का, नारी– जागरण का युग है। केवल समाज सुधारक इस कार्य में नही लगं हुए थे, बल्कि खुद नारी भी अपनी परवशता के प्रति जागृत हो गई थी।–उसने अपनी आतंरिक शक्ति को पहचान लिया। बाल विवाह, दहेज प्रथा, पर्दा प्रथा जैसे कुप्रथाओं का विरोध किया। शिक्षा के प्रसार से अपने उपेक्षित एवं शोचनीय जीवन से मुक्ति पाने के लिए वह उत्साह से अग्रसर हुई।

सन् 1918 से 1936 तक का समय हिन्दी उपन्यास – सहित्य के इतिहास में प्रेमचन्द युग के नाम से अभिहित हुआ। वस्तुतः हिन्दी के वास्तविक उपन्यास का श्री गणेश ही प्रेमचंद से हुआ। हिन्दी उपन्यास को उसका वास्तविक गौरव प्रेमचन्द द्वारा ही प्राप्त हुआ। प्रेमचन्द का हिन्दी में आविर्भाव सन् 1918 में "सेवासदन" (2) के प्रकाशन के साथ हुआ। डॉ.रामदरश मिश्र ने इस उपन्यास के संदर्भ में लिखा है –"सेवासदन उपन्यास कला और समस्याओं की पकड़ तथा चित्र दोनों दृष्टियों से पहला परिपक्व उपन्यास है।" प्रेमचन्द के पूर्व हिन्दी उपन्यास महज आदर्शवाद की परिधि में अवस्थित था। उसे यथार्थ से जोड़ने का कार्य प्रेमचंद ने किया। वे उपन्यास को आकाश से धरती पर ले आये। डॉ. रामविलाश शर्मा के शब्दों में "चन्द्रकान्ता" और "तिलस्में होशरूवा" में अरूचि भी पैदा की। जन–रूचि के लिए उन्होंने नये मापदण्ड कायम किये और साहित्य के लिए नये पाठक और पाठिकाएं कायम किये यह उनकी जबरदस्त सफलता थी।

"सेवासदन" के पश्चात प्रेमचन्द के प्रेमाश्रम (1920), रंगभूमि (1925), कायाकल्प (1926), निर्मला (1926), गवन (1930), कार्मभूमि (1926), गोदान (1936), प्रभ्रति उपन्यास आते है इनमें प्रेमचंद ने सुखदा, जालया, सोफिया, सकीना, धनिया जैसे सशक्त नारी–पात्र दिये हैं। प्रेमचंद के नारी पात्रों में संघर्ष है, जिजीविषा है, रूढ़ियों और अन्धविश्वासों से टकराने का साहस है। वस्तुतः प्रेमचन्द चाहते है कि हमारे देश का नारी–वर्ग हजारों वर्ष की शास्त्रानुमोदित गुलामी से बाहर आये।

प्रेमचंद पूर्व काल में नारी पूर्ण रूप से पराधीन थी। अनेक प्रकार के पारिवारिक, समाजिक, आर्थिक बन्धन उस पर लादे गये थे। मनु की "न स्त्री स्वान्त्र्य गर्हति" इस उक्ति का साकार रूप थी। पूर्व प्रेमचन्द कालीन नारी उसे पराधीनता के प्रति कोई आक्षेप नही था। अपने इस प्राकर की उपेक्षित एवं दुःखपूर्ण जीवन के प्रति शायद उसके मन में दुःख है परन्तु क्रोध नहीं। अपने "स्व" की रक्षा करने वाली, पुरूषों से समानता का दावा करने वाली, कर्तव्य सम्पन्न आत्म–निर्भर नारी के दर्शन हमें इस काल में नहीं होते। यह हिन्दी उपन्यास साहित्य का प्रांरभिक काल था। आगे चल कर हिन्दी उपन्यास का जो विशाल भवन बनाया गया, उसकी नीवं इसी काल में डाली गई। यह वह कैनवास है जिस पर प्रेंमचंद ने तेजस्वी, स्वतंत्र व्यक्तिव–सम्पन्न, आत्म–गौरव से ओत–प्रोत नारी के स्वरूप का अंकन हैं।

मनुष्य का संस्कार करके उसके व्यक्तित्व को विकसित बनाने का काम शिक्षा द्वारा ही संभव होता है। अतः समाज की प्रगति उस समाज में होने वाले शिक्षा प्रसार पर भी निर्भर होती है जिस सामज का "आधा अंग" अर्थात नारी अशिक्षित है, वह समाज प्रगति नहीं कर सकता है। अतः समाज में नारी शिक्षा का प्रसार होना नितान्त जरूरी हैं। भारत में वैदिक काल में नारी–शिक्षा का महत्व स्वीकार किया गया था और उसे आवश्यक माना गया था। परन्तु समय के परिवर्तन से नारी–शिक्षा को अनावश्यक माना गया और अज्ञान की गठरी बन गई। अंग्रेजो के आगमन से उनकी संस्कृति एवं सभ्यता से परिणित होकर हमारे समाज सुधारकों ने नारी शिक्षा के महत्व को भी फिर अनुभव किया।

नारी–शिक्षा के प्रचार के कारण नारी जाग्रति हो गई उसने अपनी परम्परागत व्यक्तित्व को त्याग दिया। शिक्षा प्राप्ति के कारण नारी को "आत्मबोध" हो गया। अपनी गुलामी की जजीरें तोड़ेने के लिए वह प्रस्तुत हो गई। उसने समझ लिया कि अपनी दासता से युक्त होने का प्रयत्न जब तक खुद का अन्त नही हो सकता। उसमें आत्म–सम्मान जाग्रत हो गया। अब किसी भी अवस्था में अपनी आत्मा के प्रति वंचना करना वह स्वीकार नहीं करती।

पुनरूत्पति की क्षमता के कारण नारी केवल "संतान निर्मित का यंत्र" बन गई थी। पुरूष के अधिकार की वस्तु बन गई थी। नारी ने स्वयं पढ़ लिखकर पुरूष के नारी की ओर देखने के इस दृष्टिकोण का विरोध किया।

नारी–शिक्षा के कारण नारी का दृष्टिकोण विकसित बन गया। अतः उसमें पर धर्म सहिष्णुता आ गई। जाति भेद के बन्धन वह नहीं मानती। सामाजिक कुप्रथाओं का विरोध करती है। समाज के प्रति होने वाले कर्तव्य समाज को भी वह पहचान गई। अपने सामाजिक दायित्व को पूरा करने के लिए प्रयत्नशील हो गई। "सेवासदन" (2) की सुमन विधवाएँ, परित्यकताएँ आदि के लिए "सेवाश्रम" खोलती है। "गोदान" (10) की मालती गाँव में जाकर ग्रामीण नारियों में शिक्षा प्रचार का कार्य अपना लेती है। "बिदा" की चपला भी आजन्म अविवाहित रहकर स्त्री जाति के उद्धार का कार्य करना चाहती है।

नारी शिक्षा के कारण नारियों में नवीन चेतना का संचार हुआ और न केवल पारिवारिक, न केवल सामाजिक बल्कि राष्ट्र सम्बंधी उत्तरदायित्व के प्रति भी जागरूक हो गई और उसने स्वाधीनता संग्राम में सक्रिय हिस्सा लिया। "वचन का मोल" की कजरी गांधीजी के तत्वाधान से प्रभावित होकर आश्रम के लिए अपना सारा जीवन अर्पित करती है। शैलबाला, यशोदा, प्रतिभा, आरती, शीला आदि नारियाँ भी राजनीतिक कार्य में सक्रिय योगदान देती है।

प्रेमचंद साहित्य में नारी जीवन की समस्याएँ ज्वलन्त जीवन में विद्यमान है। प्रेमचंद युगीन नारी जीवन की अधिकांश समस्याएँ वैवाहिक जीवन से समबद्ध थी लेकिन सर्वागीण दृष्टि से विचार करने पर ज्ञात होता है कि अधिकांश समस्याओं के बीज उन परिस्थितियों गें निहित रहते है। जिनमें विवाह से पूर्व नारी का जीवन व्यतीत होता है। विवाह से पूर्व नारी जिन परिस्थितियों के मध्य रहती है उन्ही के अनुरूप उसकी रूचियों एवं जीवन दृष्टि का विकास होता है। और आगे चलकर उसका वैवाहिक जीवन भी उन परिस्थितियों से प्रभावित होता रहता है।

प्रेमचन्द किसी समस्या का उद्‌घाटन मात्र करके अपने कर्तव्य की इतिश्री और कहानियों के माध्यम से तत्कालीन समाज की समस्याओं को सुलझानें का भी प्रयास किया है। प्रेमचंद के मतानुसार दहेज की समस्या तभी सुलझ सकती है जब नवयुवक वर्ग आत्मबल का परिचय दें। इस समस्या के निराकरण का एक मात्र उपाय है इसके विरूद्ध जनमत तैयार करके समाज में इस कुप्रशा के प्रति घृणा उत्पन्न करना।

प्रेमचन्द ने तत्कालीन वैवाहिक प्रथा और उसके दोषों को सूक्ष्म दृष्टि से परखा था उन्होने सुमन, सुखदा और सुमित्रा के संदर्भ में यह स्पष्ट कर दिया है कि वह विवाह के सम्बन्ध में माता–पिता अपने अत्तरदायित्व का गंभीरता से निर्वाह नहीं करते इसलिए प्रायः पति–पत्नी के विचारों एवं जीवनमूल्यों में वैष्य दृष्टिगत होता है जिसके परिणामस्वरूप दाम्पत्य जीवन नरक बन जाता है। प्रेमचन्द ने दहेज प्रथा जैसी कुप्रथा पर भी प्रकाश डाला है। उपन्यास "सेवासदन" और "निर्मला" मे अनमेल विवाह के कुपरिणामों को पूर्णतया उभार दिया है। अनमेल विवाह के परिणामस्वरूप "सुमन" घृणित जीवन अपनाने को बाध्य हो गयी। इसी प्रकार मुन्शी तोताराम का परिवार नष्ट हो गया। निर्मला जीवन भर घुटती रही और अन्त में अकाल मृत्यु को प्राप्त हुई। इस प्रकार प्रेमचंन्द ने यह स्पष्ट कर दिया है कि अनमेल विवाह के कारण कितनी ही स्त्रियों की आशाएँ और आकाक्षाएँ नष्ट हो जाती है।

प्रेमचंद युगीन नारी आर्थिक दृष्टि से पुरूष पर आश्रित थी। इसलिए पति की मृत्यु के बाद विधवा नारी को एक ओर तो समाज की कठोर आलोचना से स्वयं का बचाए रखने की चिन्ता सदैव लगी रहती थी और दूसरी ओर पेट की चिंता उसे जीवन के कठोर अभिशापो का लक्ष्य बनाती थी। उस प्रकार संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि प्रेमचंद – युग में विधवा–नारी की समस्या के दो पक्ष थे – आर्थिक और नैतिकं।

प्रेमचन्द– युग में स्त्रियाँ पर्याप्त संख्या में उच्च शिक्षा पाने लगी थी। शिक्षित स्त्रियों में आर्थिक स्वालम्बन प्राप्त करने एवं विवाह न करने की प्रवृत्ति निरन्तर बढ़ती जा रही थी। वास्तव में शिक्षित नारी में यह प्रवृत्ति तत्कालिन समाजिक अन्याय की प्रतिक्रिया स्वरूप उत्पन्न हुई थी। समस्त सामाजिक मान्यताओ के प्रति शिक्षित नारी की यह विद्रोह–भावना समाज को किस दिशा में ले जायेगी, यह ज्वलंत प्रश्न था।

IV निष्कर्ष

परिवर्तन की यह श्रृंखला आगे भी जारी है। कारण परिवर्तन एक अखंड परम्परा है। समय एवं समाज के साथ परिवर्तन होता रहता है। प्रेमचन्द काल से लेकर स्वातंत्र्य पूर्व–काल तक पारिवारिक, समाजिक, आर्थिक, राजनीतिक संदर्भ के साथ बदलते परिवेश के साथ नारी का स्वरूप बदलता गया। प्रेमचंद युग तक "अबला" समझी जाने वाली नारी को "सबला" के रूप में चित्रित करने का प्रयत्न इन उपन्यासकारों ने किया है। अब वह पुरूषों के इशारे पर चलने वाली, कठपुतली मात्र नही है, बल्कि अपने अस्तित्व एवं व्यक्तित्व के प्रति सचेत आत्मविश्वास से युक्त, स्वाभिमानी नारी है जो पुरूषो के साथ बराबरी का दावा करती है। सन् 1947 के बाद अर्थात स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् नारी के स्वरूप को विभिन्न धरातल पर अनेक उपन्यासों में चित्रित किया गया है। जो हमारी नई पीढ़ी को मार्गदर्शन करते रहगें।

संदर्भ सूची

{1} प्रेमचन्द वरदान हंसप्रकाशन, इलाहबाद 1962

{2} प्रेमचन्द सेवासदन सरस्वती प्रेस, बनारस 1961

{3} प्रेमचन्द प्रेमाश्रम हंसप्राशन, इलाहबाद

{4} प्रेमचन्द रंगभूमि सरस्वती प्रेस, बनारस 1961

{5} प्रेमचन्द कायाकल्प सरस्वती प्रेस, बनारस 1961

{6} प्रेमचन्द निर्मला सरस्वती प्रस, बनारस 1961

{7} प्रेमचन्द प्रतिज्ञा हंस प्रकाशन, इलाहबाद 1962

{8} प्रेमचन्द गबन हंस प्रकाशन, इलाहबाद 1962

{9} प्रेमचन्द कर्मभूमी हंस प्रकाशन, इलाहबाद 1962

{10} प्रेमचन्द गोदान सरस्वती प्रेस, बनारस 1961

{11} प्रेमचन्द मानसरोवर भाग 1 हंस प्रकाशन, इलाहबाद 1960

{12} प्रेमचन्द मानसरोवर भाग 2 हंस प्रकाशन, इलाहबाद 1962

{13} प्रेमचन्द मानसरोवर भाग 3 सरस्वती प्रेस, बनारस

{14} प्रेमचन्द मानसरोवर भाग 4 हंस प्रकाशन, इलाहबाद1962

{15} प्रेमचन्द मानसरोवर भाग 5 सरस्वती प्रेस, बनारस 1962

{16} प्रेमचन्द मानसरोवर भाग 6 हंस प्रकाशन, इलाहबाद 1960

{17} प्रेमचन्द मानसरोवर भाग 7 हिन्दुस्तानी पब्लिशिग हाउस, इलाहबाद 1951

{18} प्रेमचन्द मानसरोवर भाग 8 हंस प्रकाशन, इलाहबाद 1960

{19} प्रेमचन्द कफन हंस प्रकाशन, इलाहबाद 1961

{20} प्रेम चतुर्थी हिन्दी पुस्तक एजेन्सी, ज्ञानवी, काशी 1944

{21} प्रेमचन्द साहित्य का उद्देश्य हंस प्रकाशन, इलाहबाद 1954

{22} प्रेमचन्द संग्राम सरस्वती प्रेस, बनारस 1962

{23} प्रेमचन्द प्रेम की वेदी हंस प्रकाशन, इलाहबाद 1957